शिक्षकों की कलम से

विगत कुछ अंकों से हमने एक नया कॉलम शुरू किया है जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार दो अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, एक छोटी-सी गुज़ारिश है कि आप अपने अनुभवों को भी ज़रूर साझा करें।

1. वॉट्सएप वार्तालाप ..... माधव केलकर
2. समझ गए ना! ..... मूलचन्द बोहरा

समझ गए ना!

मूलचन्द बोहरा

ठीक है ना! समझ गए ना! हो गया ना! हाँ, अब ठीक है ना! अभी पूछ लो, फिर मत कहना! ठीक है तो अब आगे चलें!

ये कुछ ऐसे जुमले हैं जिन्हें हमारे शिक्षक आम तौर पर कक्षा में शिक्षण के दौरान इस्तेमाल करते हैं। वे इस माध्यम से बच्चों के शैक्षणिक स्तर को परखना चाहते हैं। और ये जुमले अक्सर उनके लिए आकलन के प्रमुख संकेतक हैं। इस सन्दर्भ में सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि आखिर आकलन है क्या।

1. यह सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का एक अंग है, जो सतत चलता रहता है।
2. इसके ज़रिए विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न तरीकों से सीखने के लिए

मौके देना और साथ ही साथ उनकी प्रगति से अवगत होते रहना एक प्रमुख उद्देश्य है।

3. आकलन विद्यार्थियों की उपलब्धि स्तर को ज्ञात करना ही नहीं है बल्कि सीखने में आने वाली बाधाओं का पता लगाना और उनको यथोचित रूप से दूर करना भी है।

4. इससे विद्यार्थियों की सीखने की प्रवृत्ति, रुचि व पूर्व-अनुभवों का पता चलता है। जैसे वे पहले से क्या जानते हैं और क्या कर सकते हैं - आकलन की प्रक्रिया हमें यह जानने में भी मदद करती है।

5. आकलन का प्रमुख उद्देश्य सीखने की गुणवत्ता को सुनिश्चित करना है। अतः आकलन-प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता भी ज़रूरी है।

इस तरह आकलन मूल्यांकन का शुरुआती चरण भी है और मूल्यांकन के अन्तर्गत समाहित भी है।

इसमें एक महत्वपूर्ण बात जो छूट गई वह है इस प्रक्रिया को जीवन्त बनाए रखना। यह उबाऊ व निर्जीव गतिविधि न बन जाए इसके लिए इसे बच्चों की रुचि व प्रकृति के अनुसार अर्थपूर्ण बनाया जाना ज़रूरी है।

क्या इन सब मानकों पर यह जुमलों वाला आकलन खरा उतरता है? क्या हम ऐसे दो-चार फिकरे फैंक कर बच्चों का सही आकलन कर सकते हैं? गहराई से सोचेंगे, तो हमें इन सभी प्रश्नों के उत्तर *ना* या *लगभग ना* में ही मिलेंगे।

हाँ कुछेक, मुखर विद्यार्थी ज़रूर इस प्रक्रिया में साझेदार बन सकते हैं और वो भी सीमित भूमिका में। *हाँ* या *ना* वाली स्थिति से थोड़ा आगे बढ़ते हुए ये बच्चे फलाँ समझ में आया या फलाँ नहीं, जैसे जवाबों के साथ थोड़ी साझेदारी कर पाते हैं। एक-दो सवाल-जवाब के पश्चात् वे भी इस प्रक्रिया से विलग हो जाते हैं। मान लो अगर कक्षा में कोई मुखर विद्यार्थी न हो, तो यह पूरी प्रक्रिया चन्द सेकण्डों ही में निपटा दी जाती है, समझ में आ गया ना! अब सवाल यह उठता है कि बच्चे शिक्षक के आदर्श वाक्य 'समझ गए ना!' के साथ विमर्श क्यों नहीं कर पाते हैं?

इसे समझने के लिए हमें कक्षा-कक्ष के अनुभवों और शिक्षा मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलुओं को समझना होगा। यहाँ हम कुछेक अनुभवों के साथ इन सवालों के जवाब तलाशने का प्रयास करेंगे।

पहला

अगर बच्चा शिक्षक के 'समझ गए ना' का उत्तर *ना* में देता है तो वह पूरी कक्षा में उपहास का पात्र बनता है। शिक्षक भी जाने-अनजाने इस उपहास-उत्सव में शामिल हो जाते हैं – 'इतना भी नहीं आया', 'यह बात मैं कितनी बार समझा चुका हूँ', 'दिमाग है या कचरा'। हालाँकि सभी शिक्षक ऐसा नहीं करते। इस प्रक्रिया में बच्चे

भरी कक्षा में अपनी बेइज़्ज़ती के डर से गुरुजी की *हाँ में हाँ* ही मिलाते हैं, चाहे उन्हें प्रस्तुत विषयवस्तु समझ में आई हो या नहीं। इस सम्बन्ध में मनोविज्ञानी माउसटाकाज़ (1956) की मान्यता है कि आकलन का सही सम्पादन उन्हीं कक्षाओं में किया जाना सम्भव है जहाँ विद्यार्थियों को अपनी आलोचना अथवा भर्त्सना का भय न हो, जहाँ वे अपने विचार बिना किसी भय के व्यक्त कर सकें।

दूसरा

कई बार शिक्षक खुद ही अपना बखान करते रहते हैं। धीरे-धीरे बच्चों को भी लगने लगता है कि हमारे गुरुजी सचमुच सर्वज्ञाता हैं। शिक्षक इस सर्वज्ञाता की छवि को बचाना ज़रूरी समझते हैं और इसी चक्कर में कई बार गलत-सलत जानकारियाँ भी बच्चों को परोस देते हैं। बच्चे, जो इन जैसे शिक्षकों से जुड़े होते हैं, इनके आभा मण्डल से प्रभावित रहते हैं, इसलिए उनके लिए 'समझ गए ना!' का उत्तर सदैव 'हाँ समझ गए' ही होता है। यह स्थिति भी बच्चों की मुखरता में बाधक बनती है।

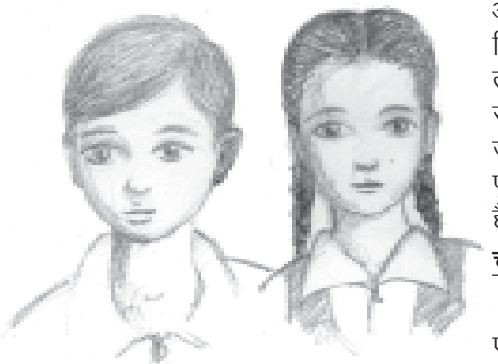

तीसरा

बच्चे आम तौर पर पहल करने में झिझकते हैं। अमुक बच्चा, नहीं बोल रहा है, तो मैं क्यों बोलूँ? समझ तो खुश्बू को भी नहीं आया, वो तो नहीं बोली, फिर मैं क्यों बोलूँ? - कुछ ऐसे ही सोच-विचार करते हुए बच्चे *ना* कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते और बच्चे की *हाँ* सुनकर शिक्षक अपने काम को आगे बढ़ाते जाते हैं।

बाल मनोविज्ञान की प्रसिद्ध पुस्तक *तोतो चान* में इसी तरह का सन्दर्भ आया है। तोतो चान एक स्कूल से निकाले जाने पर शरारती बच्ची के तौर पर अगले स्कूल में इसलिए सबसे समझदार, होशियार बच्ची के तौर पर जानी जाती है क्योंकि उसे वहाँ प्रश्न पूछने की छूट व प्रोत्साहन दिया जाता है।

चौथा

कक्षा का वातावरण सामाजिक एवं भावनात्मक होना चाहिए। इस

वातावरण में बच्चे अधिक सीखते हैं और उनमें समझने की क्षमता बढ़ती है। इस वातावरण में प्रक्रिया को सुगमता से सम्पादित किया जा सकता है। शिक्षाशास्त्री सोलोमन, रोजेनवर्ता तथा बेजदिक (1964) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि उन अध्यापकों के विद्यार्थियों का ज्ञान अधिक था जो नियंत्रण पर अधिक बल न देकर कक्षा में विद्यार्थियों को स्वतंत्रता प्रदान करते थे। इसी प्रकार वालवर्ग तथा एण्डर्सन (1968) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि अध्यापक के सक्रिय कक्षागत व्यवहार से कक्षा की शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पाँचवाँ

ऊपर हमने आकलन के दोषपूर्ण होने के कुछ ऐसे कारणों का ज़िक्र किया है जो शिक्षकों की समझ से जुड़े हुए थे या फिर बच्चे के मनोविज्ञान से। इनके अलावा कुछ व्यावहारिक बातें भी हैं जिनकी वजह से यह प्रक्रिया अक्सर दोषपूर्ण बन जाती है।

मसलन, 100 बच्चों की कक्षा में, शिक्षक एक-एक बच्चे का आकलन तो नहीं कर पाता। 'प्रतिभाशाली' विद्यार्थी तो वैसे ही समझ जाते हैं और अगर ज़रूरत पड़ती भी है तो वे खुद भी पूछ लेते हैं। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिन्हें शिक्षक कमज़ोर मानते हैं, उनसे वे एकाध प्रश्न पूछकर अपने शिक्षण की प्रभावशीलता को आँक लेते हैं परन्तु इस बीच कुछ ऐसे बच्चे रह जाते हैं, जो न तो मुखर, न बहुत होशियार और न ही शिक्षक की नज़र में कमज़ोर। ऐसे बच्चों का आकलन नहीं हो पाता और उनकी समस्याएँ जस-की-तस बनी रहती हैं।

आगे कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं जिनकी मदद से हम आकलन की प्रक्रिया को बेहतर बना सकते हैं।

एकरसता न हो

आकलन की प्रक्रिया उबाऊ व नीरस न बने, इसके लिए शिक्षक को सदैव सचेत रहना होगा। उसे बीच-बीच में शिक्षण प्रक्रिया की एकरसता को तोड़ने के लिए कुछ लीक से हटकर काम करने होंगे। मसलन विषयवस्तु से सम्बन्धित कोई कविता, सूत्र, कहानी आदि पर बातचीत करना, लेखन करना-करवाना, पहेलियाँ तैयार करना-करवाना, खेल खिलाना आदि। इन सृजनात्मक क्रियाकलापों के माध्यम से बच्चों के स्तर को आँका भी जा सकता है और उन्हें आनन्ददायी एवं अर्थपूर्ण वातावरण भी दिया जा सकता है। ज़रूरी है कि कक्षा में अन्तःक्रिया दो तरफा हो। इसमें बच्चों की भागीदारी अधिक-से-अधिक हो। ऐसे क्रियाशील माहौल में शिक्षक अपने शिक्षण की प्रतिपुष्टि आसानी से कर सकता है।

सवाल पूछने का वातावरण मिले

कक्षा में प्रश्न पूछने, जवाब देने का माहौल बनाना चाहिए। प्रत्येक पखवाड़े या सप्ताह में एक दिन चुनकर उसे 'प्रश्न-उत्सव' का नाम दिया जा

सकता है। यह कार्यक्रम विषयवार भी रखा जा सकता है और समग्र विषयों का एक साथ भी रखा जा सकता है। इससे बच्चों में प्रश्न पूछने की वृत्ति का विकास होगा और शिक्षक के लिए यह सहूलियत रहेगी कि वह इसके ज़रिए बच्चों के स्तर को आँक सकेगा और नियमित कक्षा में भी बच्चों की इस प्रवृत्ति का व्यावहारिक उपयोग कर सकेगा।

शिक्षक की दक्षता

चेहरा वह बयान कर देता है, जो कई बार उसकी ज़ुबान भी नहीं कह पाती। चेहरा पढ़ना भी एक कला है और इस कला में दक्ष होना शिक्षक के लिए ज़रूरी है क्योंकि बच्चे को क्या समझ में आया या क्या नहीं, यह बच्चे का चेहरा अक्सर अभिव्यक्त कर देता है। सचेत शिक्षक बच्चों के चेहरे पढ़कर उनके सीखने के स्तर को जान

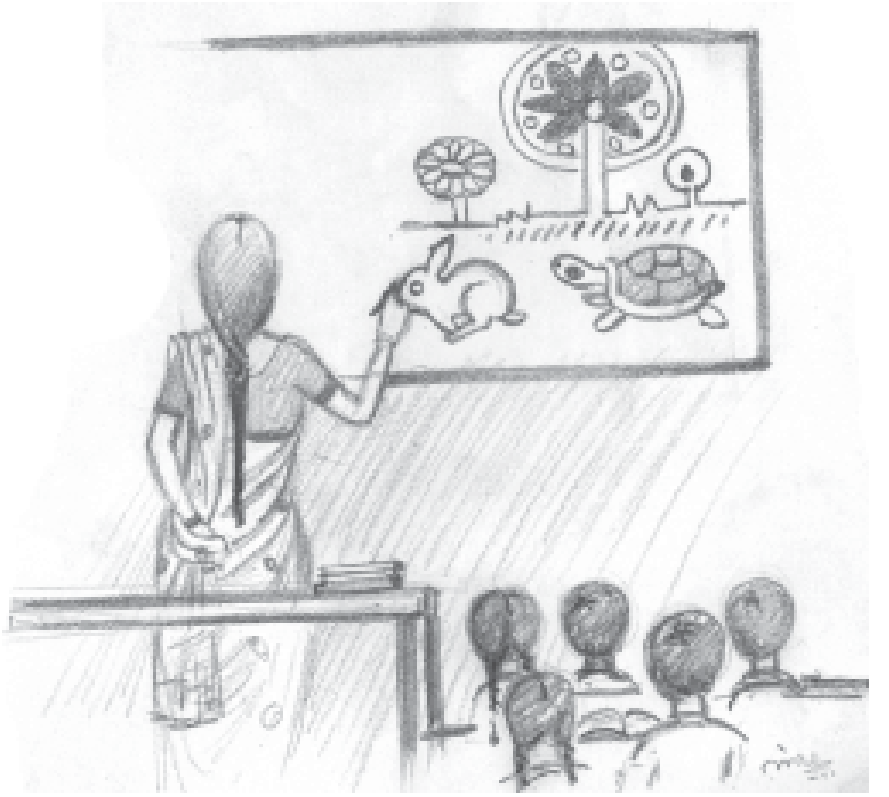

लेते हैं। शिक्षक तद्नुसार अपने शिक्षण में उतार-चढ़ाव, विराम आदि का इस्तेमाल करते हुए बात को सभी बच्चों तक पहुँचाने का प्रयास कर सकते हैं। शिक्षक को इस कौशल में निखार लाने के लिए मनोविज्ञानी बनना पड़ता है। जहाँ उसे लगे कि और अधिक काम करना ज़रूरी है, उसे बच्चों को पर्याप्त समय और मौके उपलब्ध कराने चाहिए।

मूलचन्द बोहराः लम्बे समय तक उच्च-माध्यमिक विद्यालय में हिन्दी शिक्षण किया है। समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में शैक्षिक लेख, कविता-कहानियाँ आदि प्रकाशित होते रहे हैं। वर्तमान में डाइट, बीकानेर में हिन्दी के प्राध्यापक हैं।

सभी चित्रः नीलेश गहलोतः चित्रकार हैं। धार गवर्नमेंट आर्ट कॉलेज से चित्रकारी की पढ़ाई। धार में निवास। वर्तमान में रियाज़ अकेडमी, एकलव्य से इलस्ट्रेशन का कोर्स कर रहे हैं।